विचारधाराओं की जंग का शिकार बनते हमारे विश्वविद्यालय

सन्दर्भ

- भारत में उच्च शिक्षा की स्थिति दयनीय है, हमारे विश्वविद्यालयों में अध्यापकों का अभाव, शिक्षा की गुणवत्ता निचले स्तर पर है, लेकिन कभी इन चीजों की माँग करता छात्रों का हुजूम सड़कों पर नहीं दीखता। किसी न्यूज़ चैनल के डिबेट का हिस्सा नहीं बनता और हमारे नीति निर्माताओं को भी ये समस्याएँ दृष्टिगोचर नहीं होतीं। कुछ लोगों का मानना है कि हमारे विश्वविद्यालय परिसर को चारों तरफ से तारों या दीवारों के बाड़ से नहीं बल्कि एक खास विचारधारा से घेरा जा रहा है, वहीं कुछ लोगों का मानना है कि पहले से एक खास विचारधारा के गुलाम हमारे विश्वविद्यालय अब आज़ाद हो रहे हैं।
- वर्ष 2016 में जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय में भारत विरोधी नारे लगे और हाल ही में दिल्ली विश्वविद्यालय के रामजस कॉलेज में एक सेमिनार के आयोजन के दौरान मार-पीट की घटना हुई, और इन दोनों घटनाओं के बीच के समय में भी देश के विश्वविद्यालय परिसर शांत नहीं रहे। वस्तुतः इस विवाद में दो पक्ष हैं, एक वह जो विश्वविद्यालय परिसर को सरकारी कब्जे में लिये जाने की बात कर रहा है और दूसरा वह जो यह मानता है कि हमारे विश्वविद्यालय पहले से ही वैसे लोगों के कब्ज़े में है जो नहीं चाहते कि यहाँ से भारतवर्ष को प्रेम करने वाले नागरिक निकलें। अतः इन बातों पर गौर करना दिलचस्प होगा कि क्या सच में हमारे विश्वविद्यालयों को क़ैद में लिया जा रहा है? और आगे का रास्ता क्या हो?

सरकार का एजेंडा थोपा हुआ मानने वालों के तर्क:

- इस विवाद में शामिल दो में से एक पक्ष यह मानता है कि केंद्र में मौजूद सरकार एक प्रेक्षक समाज (surveillance society) का निर्माण करना चाहती है, वस्तुतः प्रेक्षक समाज वह अवधारणा है जहाँ किसी व्यक्ति के जीवन में लगभग हर कदम पर सरकार का हस्तक्षेप होता है, समाज, सरकार के समानांतर सोच वाला बन जाता है और उसके खिलाफ बात करने वाली प्रत्येक आवाज़ को दबा दिया जाता है। ध्यातव्य है कि ऐसा अन्य विचारधाराओं को तिलांजली देकर ही किया जा सकता है, अतः सरकार और सरकार के सहयोगियों ने उदारवाद, समाजवाद और नारीवाद जैसे तमाम अवधारणाओं को खारिज करना शुरू कर दिया है, इस क्रम में लोकतंत्र की मूल्यों की बात कौन करे यहाँ तो कानून को हाथ में लेकर विरोध में उठने वाली हर आवाज़ को दबाया जा रहा है।
- विश्वविद्यालयों को सरकार के कब्ज़े में मानने वालों ने मीडिया की भूमिका को लेकर भी निराशा व्यक्त की है। इन वर्गों का विचार है कि सरकार राष्ट्रवाद के नाम पर छात्रों को भड़का रही है ताकि मुख्य समस्याओं से लोगों का ध्यान बँटा रहे। दरअसल, सरकार में समाज के दबे-कुचले वर्ग का प्रतिनिधित्व बहुत ही कम है, और सत्ता में बैठे लोगों को डर है कि कहीं यह शोषित वर्ग वैकल्पिक राजनीति का रास्ता तलाश न कर ले, अतः इनकी जड़ों पर प्रहार किया जाए और ऐसी व्यवस्था की नींव डाली जाए जिसमें हमारे विश्वविद्यालयों से ऐसे लोग निकलें ही नहीं।

इन तर्कों के निहितार्थ

- गौरतलब है कि हमारे विश्वविद्यालयों में भारत के अलग-अलग राज्य, धर्म और जाति से संबंध रखने वाले छात्र पढ़ते हैं। विविधिता ही भारत की खूबसूरती है और भारत के विश्वविद्यालय इसी विविधिता के परिचायक हैं। हम भारत की विविधिता की बात इस सन्दर्भ में कर रहें है कि हाल ही में राजस्थान में महाराणा प्रताप के नाम के बाद 'महान' की उपमा लगाने की बात कही गई है। महाराणा प्रताप की शूरवीरता पर प्रश्नचिन्ह नहीं लगाया जा सकता और उन्हें महान की संज्ञा से विभूषित करना कितना सही है, इस बिंदु पर इतिहासकारों की राय अलग-अलग है किन्तु इस बिंदु पर शायद बिलकुल भी दो राय नहीं होगी कि अकबर के नाम से महान की उपमा नहीं हटानी चाहिये, जिसकी बात राजस्थान सरकार कर रही है। इस प्रकार के प्रयासों से हम भारत की विभिन्नता में एकता की ताकत को कमज़ोर कर रहे हैं और विश्वविद्यालयों के जिन कमरों में ज्ञान-विज्ञान, साहित्य और दर्शन की बातें होनी चाहिये वहाँ अब खिड़कियों के काँच टूटने का शोर सुनाई दे रहा है। छात्र जीवन के दौरान विभिन्न विचारधाराओं के मर्म को समझे बिना परिपक्वता हासिल नहीं की जा सकती, और एक परिपक्व नागरिक ही बेहतर समाज का निर्माण करता है। अतः छात्रों को किसी एक विचारधारा, चाहे वह पूंजीवाद हो या समाजवाद, का गुलाम बनने को मज़बूर करना उचित नहीं कहा जा सकता।

विश्वविद्यालयों को देश-विरोधी ताकतों के गिरफ़्त में बताने वालों के तर्क

- इस पक्ष के लोगों का मानना है कि राष्ट्रवाद को अराजकता का नाम दिया जा रहा है जो कि गलत है। वस्तुतः राष्ट्रवाद के मुख्यतः तीन आयाम हैं। एक वह जो जर्मनी में देखने को मिला, दूसरा वह जिसने फ्रांस में राज्य और राष्ट्र प्रथम की भावना का संचार किया और तीसरा राष्ट्रवाद वह है जिसमें तथ्यों की चयनात्मक व्याख्या के आधार पर लोगों का ध्रुवीकरण करके सत्ता प्राप्त करना उद्देश्य होता है। हालाँकि भारत का संविधान जिस भारत की बात करता है वह राष्ट्रवाद की इन तीनों ही व्याख्याओं से परे है। दरअसल जिस भारतवर्ष से लोगों की भावनाएँ जुड़ी हुई हैं उसकी बात प्राचीन काल से ही होती आ रही है। गौरतलब है कि भारत के शेक्सपियर कहे जाने वाले कालिदास, स्वामी विवेकानंद तब से भारतवर्ष की बात करते आ रहे हैं जब यूरोप में राष्ट्रवाद का जन्म भी नहीं हुआ था। 'भारत फर्स्ट' के समर्थन में खड़े लोगों का यह मानना है कि यूरोप के राष्ट्रवाद और भारत के राष्ट्रवाद में अंतर है। भारत में राष्ट्रवाद यूरोप की तरह एक कल्पना मात्र होने के बजाय एक प्राकृतिक भावना है। भारतीय उच्च शिक्षा व्यवस्था में

ऐसे लोग बैठे हैं जो भारतीयता के इस प्राकृतिक भाव को ही नकारते आ रहे है।

इन तर्कों के निहितार्थ

- राष्ट्र की परिभाषा एक ऐसे जन समूह के रूप में की जा सकती है जो कि एक भौगोलिक सीमाओं में एक निश्चित देश में रहता हो, समान परम्परा, समान हितों तथा समान भावनाओं से बँधा हो और जिसमें एकता के सूत्र में बांधने की उत्सुकता तथा समान राजनैतिक महत्त्वाकांक्षाएँ पाई जाती हों। राष्ट्रवाद के निर्णायक तत्त्वों मे राष्ट्रीयता की भावना सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण है। राष्ट्रीयता की भावना किसी राष्ट्र के सदस्यों में पाई जाने वाली सामुदायिक भावना है। हमें इस भावना का सम्मान करना चाहिये क्योंकि व्यापक समस्याओं का सामना हम एक राष्ट्र के तौर पर ही कर सकते हैं।
- हम जब भारत के विविधता को संरक्षित रखने की बात करते हैं तो प्रायः यह तथ्य गौण हो जाता है कि भारतीयता की भावना भी भारतीय विविधता की एक खास उपलब्धि है और इस परिपेक्ष्य में 'भारत की बर्बादी तक जंग रहेगी' जैसे नारों को न्यायसंगत नहीं ठहराया जा सकता। अभिव्यक्ति की आज़ादी के नाम पर विभाजनकारी तत्त्वों के कृत्य को भारतीय भावना के खिलाफ़ कार्य करने से रोकना चाहिये। हालाँकि गलत करने वाले को रोकने के लिये गलत रास्ता अख्तियार करना भी उचित नहीं है, अतः कानून तोड़ने वालों से सख्ती से निपटने की ज़रूरत है चाहे वह किसी भी विचारधारा से संबंध क्यों न रखता हो।

निष्कर्ष

- गौरतलब है कि लेफ्ट और राईट की इस जंग में सबसे अधिक प्रभावित वे लोग हो रहे हैं जो निष्पक्ष सोचना चाहते हैं और निष्पक्ष मूल्यों को अंगीकृत करना चाहते हैं। हमारे विश्वविद्यालयों से एक से बढ़कर एक राजनेता निकले हैं, लेकिन आज विश्वविद्यालयों में राजनीति का स्तर गिरता जा रहा है, देश की तमाम बड़ी पार्टियों के नेता अब संसद से निकलकर विश्वविद्यालय परिसर के टी-स्टालों के इर्द-गिर्द डेरा जमाए हुए हैं। मीडिया के कैमरे भी अक्सर विश्वविद्यालयों के गश्त लगाते रहते हैं। आज के छात्रों में जागरूकता अधिक है जबकि जानकारी कम है। ऐसा इसलिये है कि उसे स्वतंत्र रूप से सीखने और सोचने का अवसर ही नहीं दिया जा रहा है। राजनीति, विचार-विमर्श, तर्क-वितर्क सब चलते रहने चाहियें लेकिन हमारे विश्वविद्यालयों को विचारधाराओं के इस विघटनकारी जंग से बचाना होगा।

PDF Refernece URL: https://www.drishtiias.com/hindi/printpdf/our-universities-becoming-victim-of-war-of-ideology